[2013] 11 एस.सी.आर. 427

शोभा सिन्हा

बनाम

बिहार राज्य एवं अन्य

(2013 का दीवानी अपील संख्या 9366)

23 अक्टूबर 2013

[सुरिन्दर सिंह निज्जर और ए.के. सिकरी, न्यायमूर्ति]

सेवा कानून – कदाचार – कर्तव्य में लापरवाही का आरोप – विभागीय जाँच – अपीलकर्ता को बर्खास्त किया गया – उसने रिट याचिका दायर की – एकल न्यायाधीश ने याचिका स्वीकार कर ली – एकल न्यायाधीश के निर्देशों के अनुसार अपीलकर्ता के मामले की समीक्षा हेतु समीक्षा समिति गठित की गई – समीक्षा समिति ने अपीलकर्ता के विरुद्ध लगाए गए अधिकांश आरोपों से उसे लगभग मुक्त कर दिया और केवल एक हल्की प्रतिकूल टिप्पणी दी – इस आधार पर, एकल न्यायाधीश के निर्देशानुसार सरकार को नया दंडादेश पारित करना आवश्यक था – किन्तु राज्य सरकार ने एल.पी.ए दायर कर दिया – खंडपीठ ने एकल न्यायाधीश का आदेश रद्द कर दिया – अपील पर, निर्णय हुआ कि समीक्षा समिति ने स्पष्ट रूप से कहा था कि केवल "कर्तव्य में कमी का संकेत" मिलता है तथा जांच अधिकारी ने दस्तावेजी साक्ष्यों का गहन परीक्षण नहीं किया – विभागीय प्राधिकारियों के अनुसार भी आरोप का यह केवल हल्का तत्व सिद्ध हुआ था, इसलिए बर्खास्तगी का दंड पूरी तरह अनुपयुक्त था – यह न तो कर्तव्य-अनुराग की कमी का मामला था और न किसी वित्तीय अनियमितता का – अधिक महत्वपूर्ण यह कि समीक्षा समिति ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि अपीलकर्ता ने प्रस्ताव को केवल नियमित ढंग से प्रसारित किया था और मुख्य जिम्मेदारी किसी अन्य व्यक्ति की थी – समीक्षा समिति की रिपोर्ट पर राज्य सरकार को

उपयुक्त दंडादेश पारित करना चाहिए था, जो उसने नहीं किया – इसलिए राज्य सरकार को निर्देश दिया जाता है कि समीक्षा समिति की रिपोर्ट तथा एकल न्यायाधीश की इस टिप्पणी को ध्यान में रखते हुए कि अपीलकर्ता के पूरे सेवा-काल में यह पहला विभागीय मामला था, दंडादेश पारित करे – चूँकि दंड बर्खास्तगी, पदच्युत या अनिवार्य सेवानिवृत्ति नहीं होगा बल्कि उससे कम होगा, अतः अपीलकर्ता को तत्काल सेवा में पुनःस्थापित किया जाता है – बिहार सरकारी सेवक (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील) नियम, 2005 – नियम 24।

लेटर पेटेंट – लेटर पेटेंट अपील – ग्राह्यता- *अपीलकर्ता को कदाचार के आरोप में सेवा से बर्खास्त किया गया – उसने रिट याचिका दायर की – एकल न्यायाधीश के निर्देशानुसार समीक्षा समिति गठित की गई – उसने अपीलकर्ता को लगभग सभी आरोपों से मुक्त कर दिया एवं केवल एक हल्की टिप्पणी की – इसके आधार पर सरकार को नया दंडादेश देना आवश्यक था – किन्तु राज्य सरकार ने एल.पी.ए दायर कर दिया – अपीलकर्ता ने एल.पी.ए की ग्राह्यता पर आपत्ति उठाई – निर्णय यह हुआ कि यदि राज्य सरकार एकल न्यायाधीश द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया से संतुष्ट नहीं थी तो उसे उसी आदेश के विरुद्ध अपील दायर करनी चाहिए थी – परन्तु सरकार ने न केवल उस आदेश को स्वीकार किया बल्कि समीक्षा समिति का गठन कर उसके कार्य को पूरा होने दिया – समीक्षा समिति की रिपोर्ट अप्रिय लगने पर सरकार ने बाद में जाकर एल.पी.ए दायर किया – यह अत्यन्त विलम्बित था, इसलिए राज्य सरकार द्वारा दायर एल.पी.ए स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए था – बिहार सरकारी सेवक (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील) नियम, 2005 – नियम 24।*

मामले का संक्षेप अपीलकर्ता, जो राज्य सरकार में सहायक थी, ने अपनी टिप्पणियों में एक व्यापारिक फर्म को लगभग 1600 मीट्रिक टन बिटुमेन आवंटन का प्रस्ताव दिया था, बिना यह बताए कि पूर्व में आवंटित 500 मीट्रिक टन बिटुमेन का दुरुपयोग हुआ था और उस फर्म के विरुद्ध जाँच लंबित थी। आरोप था कि अपीलकर्ता के कार्यों से राज्य सरकार को

भारी क्षति हुई तथा उसने कर्तव्यनिष्ठा का पालन नहीं किया। विभागीय जांच में आरोप सिद्ध मानकर अपीलकर्ता को बर्खास्त कर दिया गया। उसने बर्खास्तगी को चुनौती देते हुए रिट याचिका दायर की, जिसमें कई आधार उठाए। एकल न्यायाधीश ने पाया कि जांच उचित नहीं थी क्योंकि दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराए गए और न ही गवाहों की परीक्षा हुई। साथ-ही, दंड भी असंगत माना गया। नियम 24(2) के तहत समीक्षा का प्रावधान होने के कारण, मामला दंड निर्धारण हेतु सरकार को वापस भेजा गया।

राज्य सरकार ने एकल न्यायाधीश के आदेश को न तो तुरंत चुनौती दी और न ही परिसीमा अवधि के भीतर। बाद में, एकल न्यायाधीश के निर्देशों के अनुसार अपीलकर्ता के मामले की समीक्षा हेतु एक समीक्षा समिति गठित की गई। समीक्षा समिति ने अपीलकर्ता को लगाए गए आरोपों से लगभग पूरी तरह मुक्त कर दिया, सिवाय इसके कि उसने यह संकेत दिया कि "कर्तव्य में कमी का चिन्ह दिखाई देता है।" इस आधार पर, एकल न्यायाधीश के निर्देशानुसार सरकार को नया दंडादेश पारित करना आवश्यक था। किन्तु राज्य सरकार ने एकल न्यायाधीश के आदेश को चुनौती देते हुए एल.पी.ए दायर कर दिया।

खंडपीठ ने, आक्षेपित निर्णय में, एल.पी.ए की ग्राह्यता को चुनौती देने वाले तर्क में कोई गुण नहीं देखा और एकल न्यायाधीश का आदेश रद्द कर दिया। इसलिए वर्तमान अपील दायर की गई।

अपील स्वीकार करते हुए, न्यायालय ने कहा:

खंडपीठ ने एल.पी.ए की ग्राह्यता से संबंधित अपीलकर्ता के तर्कों को नज़रअंदाज़ करके गलती की। यदि राज्य सरकार, एकल न्यायाधीश द्वारा अपनाए गए तरीके से संतुष्ट नहीं थी, तो उपयुक्त उपाय यही था कि उस आदेश को अपील में चुनौती देती। परंतु उसने एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्देशों पर कार्यवाही करना चुना और नियम 24(2), सीसीए

नियमों के तहत समीक्षा समिति गठित की। यह समीक्षा समिति, जो तीन वरिष्ठ अधिकारियों से बनी थी, पूरे मामले की विस्तृत समीक्षा कर महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ अपीलकर्ता के पक्ष में प्रस्तुत की। यह विभागीय उपाय नियमों में प्रदत्त था और समिति को पूरी जांच एवं जाँच अधिकारी की खोजों का मूल्यांकन करने का पूरा अधिकार था। समिति की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि यह अधिकतम "कर्तव्य में कमी का संकेत" का मामला था, और "कर्तव्य के प्रति अनास्था" या "विश्वसनीय सेवा की कमी" जैसे आरोप इससे सिद्ध नहीं होते। ऐसी स्थिति में, समीक्षा समिति की रिपोर्ट को गंभीरता से विचार में लिया जाना चाहिए था। सरकार का दायित्व था कि वह पहले दी गई *बर्खास्तगी* के स्थान पर उपयुक्त दंड निर्धारित करे। लेकिन जब रिपोर्ट सरकार को अप्रिय लगी, तो उसने अपना रूख बदलकर एकल न्यायाधीश का आदेश चुनौती देने का निर्णय लिया। यह बहुत देर से किया गया कदम था, क्योंकि सरकार पहले ही न केवल आदेश स्वीकार कर चुकी थी बल्कि उसके अनुपालन में समीक्षा समिति का गठन भी कर चुकी थी और उसे कार्य पूरा करने दिया था। इस परिस्थिति में, राज्य सरकार द्वारा दायर एल.पी.ए पर विचार नहीं किया जाना चाहिए था। [कंडिका 13 एवं 14] [440-एफ; 441-बी-एच; 442-ए]

भारत संघ एवं अन्य बनाम बढ़ई कामगार संघ एवं अन्य, (2006) 12 एस.सी.सी. 435 : 2006 (9) अनुपूरक एस.सी.आर. 904 — पर भरोसा किया गया।

2.1. गुण-दोष के आधार पर, भले ही यह मान भी लिया जाए कि 28 अक्टूबर 1993 और 17 जनवरी 1994 की टिप्पणियों में किसी प्रकार की कर्तव्य-च्युतिता थी, तो भी प्रश्न यह बनता है कि आरोप की प्रकृति क्या थी तथा वह किस हद तक सिद्ध हुआ। यह सब समीक्षा समिति की रिपोर्ट में स्पष्ट है, जिसे नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। समिति ने विधि-प्रदत्त अधिकारों के तहत अपना कार्य किया और सरकार का कर्तव्य था कि वह इस रिपोर्ट पर विचार कर तार्किक निष्कर्ष निकाले। [अनुच्छेद 15 एवं 17] [443-बी-सी; 444-जी]

2.2. सी.सी.ए. नियमावली के नियम 24(2) के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए पुनर्विलोकन समिति ने स्पष्ट रूप से अभिलिखित किया कि "कर्तव्य के प्रति कमी का केवल संकेत प्रतीत होता है" तथा जाँच पदाधिकारी ने जाँच करते समय साक्ष्यगत दस्तावेजों का गहन परीक्षण एवं विश्लेषण नहीं किया। जबकि विभागीय प्राधिकारियों के अनुसार भी आरोप का केवल यही तत्व सिद्ध हुआ था, ऐसी स्थिति में सेवा से बर्खास्तगी का दण्ड पूर्णतः अनुचित है। यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें अपीलकर्ता की ओर से कर्तव्य के प्रति समर्पण का अभाव अथवा किसी प्रकार की वित्तीय अनियमितता पाई गई हो। और भी महत्वपूर्ण यह है कि पुनर्विलोकन समिति ने स्पष्ट शब्दों में अपीलकर्ता के इस कथन को स्वीकार किया कि उसने प्रस्ताव को नियमित प्रक्रिया के अंतर्गत प्रस्तुत किया था तथा मुख्य उत्तरदायित्व कार्यपालक अभियंता का था। पुनर्विलोकन समिति की प्रतिवेदन के आधार पर राज्य सरकार द्वारा उपयुक्त दण्डादेश पारित किया जाना था, किन्तु उक्त प्रतिवेदन प्राप्त होने के पश्चात भी उसने ऐसा नहीं किया। उत्तरदाताओं द्वारा इस संबंध में कोई संतोषजनक स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया गया है कि उक्त प्रतिवेदन पर विचार क्यों नहीं किया गया तथा उसे उपेक्षित करने के लिए कोई वैध अथवा ठोस कारण विद्यमान था या नहीं। ऐसे किसी कारण के अभाव में यह अपेक्षित था कि सरकार आगे की कार्यवाही करते हुए उक्त प्रतिवेदन के आधार पर निर्णय लेती। [अनुच्छेद 18 एवं 19] [444-जी-एच; 445-ए-डी]

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम वी. सरोज कुमार सिन्हा (2010) 2 एससीसी 772 : 2010 (2) एससीआर 326 — संदर्भित

3. प्रत्युत्तरदायी राज्य सरकार को निर्देश दिया जाता है कि वह समीक्षा समिति की रिपोर्ट तथा एकल-न्यायाधीश के अवलोकनों — कि यह उनके पूरे सेवा-काल में पहली बार है जब अपीलकर्ता के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही हुई — के आधार पर दंड आदेश पारित करे। अपीलकर्ता इस माह के अंत तक अधिवार्षिक आयु प्राप्त करने वाली हैं। चूँकि जो दंड दिया

जाना है वह बरखास्तगी, सेवा से हटाना या अनिवार्य सेवानिवृत्ति नहीं होगा, बल्कि उससे कम दंड होगा, इसलिए अपीलकर्ता को तत्काल सेवा में पुनः स्थापित किया जाए। [अनुच्छेद 20 एवं 21] [445-डी-जी]

न्यायिक निर्णयों का संदर्भ :

2006 (9) अनुपूरक एससीआर 904 — अवलंबित (कंडिका 14)
2010 (2) एससीआर 326 — संदर्भित (कंडिका 15)

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार : सिविल अपील संख्या 9366/2013

दिनांक 04.10.2012 के पटना उच्च न्यायालय के एलपीएसंख्या 124/2011 के निर्णय एवं आदेश से।

अपीलकर्ता की ओर से : अजीत कुमार सिन्हा, ऐश्वर्या सिन्हा, अम्भोज कुमार सिन्हा

प्रत्युत्तरदाताओं की ओर से : नागेन्द्र राय, अर्धेन्दुमौलि कुमार प्रसाद

न्यायालय का निर्णय ए. के. सिकरी, न्यायमूर्ति द्वारा : अनुमति प्रदान की जाती है।

2. अपीलकर्ता के विरुद्ध हुई विभागीय जाँच में आरोप सिद्ध माने गए और उन्हें सेवा से बर्खास्त कर दिया गया। उन्होंने विभागीय जाँच की प्रक्रिया और दंड दोनों को चुनौती देते हुए रिट याचिका दायर की। एकल-न्यायाधीश ने यह कहते हुए याचिका स्वीकार कर ली कि जाँच उचित नहीं थी क्योंकि न तो दस्तावेज उपलब्ध कराए गए और न ही किसी गवाह की जिरह हुई। साथ ही, बर्खास्तगी का दंड भी सिद्ध आरोपों की तुलना में अत्यधिक था। राज्य सरकार द्वारा दायर एलपीएमें प्रभागीय पीठ ने एकल-न्यायाधीश का आदेश निरस्त कर दिया। उसी के विरुद्ध वर्तमान अपील दायर की गई है।

3. संक्षेप में तथ्य यह हैं कि अपीलकर्ता पर आरोप था कि दिनांक 17 जनवरी 1994 को उन्होंने 1600 मीट्रिक टन बिटुमेन के आबंटन हेतु मेसर्स कॉसमो ट्रांसपोर्ट प्रा. लि. के पक्ष में प्रस्ताव भेजा, जबकि इससे पूर्व 500 मीट्रिक टन बिटुमेन की गड़बड़ी तथा जाँच लंबित होने का तथ्य उन्होंने प्रस्ताव में नहीं लिखा। यह भी आरोप था कि 28 अक्टूबर 1993 की टिप्पणी में उन्होंने 500 मीट्रिक टन के दुरुपयोग का उल्लेख कर अभियोजन की संस्तुति की थी, परंतु बाद की टिप्पणी में इस तथ्य को नहीं लिखा। इन्हें कर्तव्य-लापरवाही तथा ईमानदार सेवा-भाव के अभाव के रूप में देखा गया।

4. अपीलकर्ता का बचाव यह था कि उसने केवल उच्च अधिकारियों के समक्ष एक प्रारूप प्रस्ताव प्रस्तुत किया था, जिसे उच्च अधिकारियों द्वारा अनुमोदित कर दिया गया था, इसलिए कथित कृत्यों तथा चूकों के लिए वह किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं थी। उसका उत्तर संतोषजनक नहीं पाया गया और उसके विरुद्ध नियमित विभागीय जाँच का आदेश दिया गया। जाँच पदाधिकारी ने अपनी दिनांक 9 अप्रैल, 2007 की प्रतिवेदन में निष्कर्ष निकाला कि अपीलकर्ता उसके विरुद्ध आरोपित आरोपों की दोषी है। इस प्रतिवेदन के आधार पर दिनांक 10 अप्रैल, 2009 का सरकारी संकल्प पारित किया गया, जिसके द्वारा अपीलकर्ता को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया।

5. अपीलकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका में उसने विभिन्न आधारों पर अपनी बर्खास्तगी को चुनौती दी। उसने अभिवेदन किया कि बिना किसी स्वतंत्र विचार-विमर्श के तथा केवल केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के निर्देश पर उसके विरुद्ध आरोपपत्र जारी कर दिया गया, जबकि उसका आचरण निष्कलंक था। उसका कहना था कि विभाग में सहायक के रूप में कार्यरत होने के कारण जब उसे विभाग के क्रय निदेशक जैसे वरिष्ठ अधिकारी से आदेश प्राप्त हुआ, तब उसने बिटुमेन की स्वीकृति अथवा निर्गमन के लिए प्रस्ताव अग्रसारित किया। वह निम्नतम श्रेणी की अधिकारी होने के कारण अपने वरिष्ठ अधिकारियों के निर्देशानुसार कार्य

कर रही थी। यह भी कहा गया कि आरोपों को सिद्ध करने के लिए एक भी साक्षी का परीक्षण नहीं किया गया और यहाँ तक कि उसकी निर्दोषता सिद्ध करने का भार भी उसी पर डाल दिया गया, जिससे सम्पूर्ण जाँच की वैधता और निष्पक्षता प्रभावित हो गई। उसे आवश्यक अभिलेख, विशेष रूप से पुनर्विलोकन समिति की प्रतिवेदन, जिसकी आधारशिला पर दण्ड दिया गया था, भी उपलब्ध नहीं कराई गई। किसी भी स्थिति में, ऐसे आरोप, वह भी अस्पष्ट आरोप के लिए, सेवा से बर्खास्तगी का दण्ड पूर्णतः असंगत एवं असमानुपातिक था।

6. विद्वान एकल न्यायाधीश ने उपर्युक्त तर्कों को स्वीकार करते हुए तथा रिट याचिका को अनुमत करते हुए इस तथ्य का संज्ञान लिया कि राज्य की ओर से दायर प्रतिशपथपत्र में यह स्वीकार किया गया था कि न तो किसी साक्षी का परीक्षण किया गया और न ही कोई दस्तावेज अपीलकर्ता को उपलब्ध कराया गया। बर्खास्तगी आदेश को इस आधार पर उचित ठहराने का प्रयास किया गया कि बिटुमेन की आवश्यकता तथा उसकी खरीद हेतु निधि की उपलब्धता का आकलन किए बिना अपीलकर्ता ने आगे बिटुमेन खरीदने के लिए टिप्पणी अंकित की थी। इसके अतिरिक्त, अपीलकर्ता को कॉस्मो ट्रांसपोर्ट के विरुद्ध लंबित अनेक शिकायतों की जानकारी थी, फिर भी उसने बिटुमेन क्रय संबंधी अपनी टिप्पणी में इस तथ्य का उल्लेख नहीं किया और उसकी इसी विफलता के कारण सरकार को गंभीर क्षति पहुँची। विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह मत व्यक्त किया कि विभाग का यह औचित्य उस स्थिति में स्वीकार नहीं किया जा सकता, जब आवश्यक अभिलेख उपलब्ध न कराए जाने तथा किसी भी साक्षी का परीक्षण न किए जाने की बात स्वयं स्वीकार की गई हो। सबसे महत्वपूर्ण यह कि अपीलकर्ता पर अपनी निर्दोषता सिद्ध करने का भार नहीं डाला जा सकता था; आरोपों को सिद्ध करना विभाग का दायित्व था।

7. रिट न्यायालय ने यह भी उल्लेख किया कि बिहार सरकारी सेवक (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील) नियमावली, 2005 (जिसे आगे "सी.सी.ए. नियमावली" कहा गया है)

के नियम 24(2) के अंतर्गत पुनर्विलोकन का प्रावधान उपलब्ध था। अतः बर्खास्तगी आदेश को निरस्त करते हुए रिट न्यायालय ने दण्ड के प्रश्न पर नए सिरे से आदेश पारित करने हेतु प्रकरण को बिहार सरकार के कार्मिक एवं प्रशासनिक सुधार विभाग के सचिव के पास वापस भेज दिया। ऐसा आदेश चार सप्ताह के भीतर पारित करने का निर्देश दिया गया।

8. राज्य सरकार ने रिट न्यायालय के उक्त आदेश को न तो तत्काल और न ही निर्धारित परिसीमा अवधि के भीतर चुनौती दी। इसके विपरीत, सामान्य प्रशासन विभाग द्वारा दिनांक 29 जुलाई, 2010 का आदेश संख्या 3026 जारी कर अपीलकर्ता के मामले के पुनर्विलोकन हेतु एक पुनर्विलोकन समिति का गठन किया गया, ताकि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्देशों का अनुपालन किया जा सके। यह तीन सदस्यीय समिति थी, जिसमें विशेष सचिव, संयुक्त सचिव तथा उप सचिव सम्मिलित थे। समिति ने कई बैठकें आयोजित कीं और अपीलकर्ता के मामले का पुनर्विलोकन किया। इस उद्देश्य से समिति ने अपीलकर्ता से एक अभ्यावेदन भी प्राप्त किया, जिसे उसने प्रस्तुत किया। संपूर्ण अभिलेखों, अपीलकर्ता के अभ्यावेदन तथा समस्त तथ्यों पर "गंभीर विचार" करने के पश्चात समिति ने अपनी प्रतिवेदन प्रस्तुत की, जिसका उल्लेख दिनांक 25.02.2010 की बैठक की कार्यवाही में किया गया है। उसके अवलोकन से स्पष्ट होता है कि पुनर्विलोकन समिति के अनुसार जाँच पदाधिकारी का यह निष्कर्ष कि अपीलकर्ता के विरुद्ध आरोप सिद्ध हो गए हैं, सही नहीं था। चूँकि यह मूल्यांकन स्वयं पुनर्विलोकन समिति द्वारा सी.सी.ए. नियमावली के नियम 24 के अधीन अपनी वैधानिक शक्ति का प्रयोग करते हुए किया गया था, इसलिए हम उसकी चर्चा के प्रासंगिक अंश को यहाँ पुनरुत्पादित करना उचित समझते हैं :—

"आरोपित पदाधिकारी द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन में उल्लिखित बिंदुओं का अभिलेखीय साक्ष्यों/दस्तावेजों के साथ पुनर्विलोकन किया गया, जिससे निम्नलिखित तथ्य परिलक्षित होते हैं :—

(i) विभागीय कार्यवाही संचालित करने वाले पदाधिकारी ने आरोपित पदाधिकारी के विरुद्ध उपलब्ध साक्ष्यों/दस्तावेजों का गहन मूल्यांकन किए बिना मात्र संदेह के आधार पर दोनों आरोपों को सिद्ध मान लिया।

प्रथम आरोप में दो बिंदु हैं। पहला, प्रस्ताव प्रस्तुत करते समय बिटुमेन की आवश्यकता, निधि की उपलब्धता तथा पूर्व में की गई बिटुमेन आपूर्ति के क्रियान्वयन का उल्लेख न करना।

आरोपित पदाधिकारी द्वारा प्रस्तुत उक्त आपूर्ति आदेश से संबंधित टिप्पणियों (फाइल संख्या 16/संयुक्त संवर्ग-2-17/05 के पृष्ठ 216/सी एवं 215/सी) के अवलोकन से स्पष्ट है कि कार्यपालक अभियंता के पत्र संख्या 38 दिनांक 16.01.2004 के हाशिये पर क्रय निदेशक द्वारा 1000 मीट्रिक टन बल्क बिटुमेन की स्वीकृति का आदेश दिया गया था। उक्त पत्र से पूर्व आवंटित 500 मीट्रिक टन बल्क बिटुमेन के संबंध में यह उल्लेख किया गया था कि नामित परिवहनकर्ता मेसर्स अंसारी द्वारा उसका उठाव नहीं किया गया था और उसे अन्य प्रमंडल को स्थानांतरित कर दिया गया था। आपूर्ति की मात्रा वरिष्ठ अधिकारी द्वारा हाशिये पर निर्धारित की गई थी। ऐसी स्थिति में, यद्यपि तथ्यों का उल्लेख किया जाना अधिक उपयुक्त होता, तथापि सहायक द्वारा उन तथ्यों का पुनः आकलन अथवा पुनः उल्लेख करना आवश्यक नहीं था।

(ii) पूर्व आवंटित बिटुमेन का उल्लेख स्वयं कार्यपालक अभियंता, किशनगंज के पत्र में किया गया था, अतः उसे अपनी टिप्पणी में पुनः अंकित करना आवश्यक नहीं था।

जहाँ तक निधि की उपलब्धता का प्रश्न है, उपलब्ध साक्ष्यों, विशेष रूप से मुख्य फाइल संख्या 16/संयुक्त संवर्ग-2-17/05 के पृष्ठ 314/सी पर उपलब्ध परिपत्र पत्र संख्या 8361 दिनांक 30.12.1985 के अवलोकन से स्पष्ट है कि आदेश के विरुद्ध आवश्यक राशि का भुगतान पुस्तक अंतरण के माध्यम से किया जाना था।

क्रय निदेशक द्वारा वित्त विभाग की सलाह से निर्गत आपूर्ति आदेश के मूल्य के समतुल्य राशि की उपलब्धता सुनिश्चित कर महालेखाकार को सूचित करना मुख्य अभियंता का दायित्व था। निधि की उपलब्धता तथा बजटीय प्रावधान से संबंधित कार्यों के लिए विशेष पदाधिकारी (संचार) का पृथक प्रकोष्ठ भी विद्यमान है और यह कार्य बजट शाखा के माध्यम से संपादित किया जाता है।

अतः सहायक की टिप्पणियों में निधि की उपलब्धता का विशेष उल्लेख करना अत्यावश्यक नहीं था।

वित्तीय आरोप के संबंध में यह तथ्य स्पष्ट है कि आपूर्ति आदेश में उल्लिखित बिटुमेन के परिवहन की जिम्मेदारी कार्यपालक अभियंता, किशनगंज की थी। आपूर्ति आदेश में कहीं भी कॉस्मो ट्रांसपोर्ट कंपनी नामक परिवहन ठेकेदार का उल्लेख नहीं है।" "विवादित आपूर्ति आदेश निर्गत किए जाने से पूर्व ही कॉस्मो ट्रांसपोर्ट कंपनी के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज करने तथा उसे काली सूची में डालने का प्रस्ताव आरोपित सहायक द्वारा प्रस्तुत किया गया था और इस संबंध में कार्यपालक अभियंता, सुपौल, मुख्य अभियंता, उत्तर बिहार तथा अन्य अधिकारियों को पत्र भी भेजे गए थे।

<u>समिति का निष्कर्ष</u>

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर समिति इस निष्कर्ष पर पहुँची कि आपूर्ति आदेश के प्रस्ताव को प्रस्तुत करते समय आरोपित सहायक ने इसे नियमित कार्यालयीय प्रक्रिया के अंतर्गत प्रस्तुत किया था। यद्यपि आरोपित सहायक को अपनी टिप्पणियों में इन सभी तथ्यों का भी उल्लेख करना चाहिए था, तथापि केवल इसी आधार पर उसके विरुद्ध कर्तव्य के प्रति समर्पण के अभाव अथवा कार्य के प्रति निष्ठाहीनता का आरोप पूर्ण रूप से सिद्ध नहीं माना जा सकता, यद्यपि कर्तव्यपालन में कमी के कुछ संकेत अवश्य परिलक्षित होते हैं। विभागीय कार्यवाही संचालित करने वाले पदाधिकारी को साक्ष्यगत दस्तावेजों का गहन परीक्षण एवं विश्लेषण

करने के पश्चात ही आरोपों की पुष्टि करनी चाहिए थी।"**

9. उपर्युक्त प्रतिवेदन के उद्धृत अंश के अवलोकन से स्पष्ट है कि पुनर्विलोकन समिति ने स्पष्ट शब्दों में यह निष्कर्ष निकाला कि अपीलकर्ता के विरुद्ध लगाए गए वित्तीय आरोप सिद्ध नहीं हुए, क्योंकि उक्त दायित्व कार्यपालक अभियंता, किशनगंज का था। आगे यह भी कहा गया कि सहायक के रूप में अपीलकर्ता ने आपूर्ति आदेश का प्रस्ताव सामान्य कार्यालयीय प्रक्रिया के अंतर्गत प्रस्तुत किया था। निस्संदेह, उसे अपनी टिप्पणियों में इन तथ्यों का उल्लेख करना चाहिए था, किन्तु किसी भी स्थिति में उसके विरुद्ध कर्तव्य के प्रति समर्पण के अभाव अथवा कार्य के प्रति निष्ठाहीनता का आरोप नहीं लगाया जा सकता था और न ही इसे पूर्णतः सिद्ध माना जा सकता था, यद्यपि कर्तव्यपालन में कमी के कुछ संकेत अवश्य थे। जाँच पदाधिकारी के संबंध में प्रतिकूल टिप्पणी करते हुए पुनर्विलोकन समिति ने कहा कि उसे साक्ष्यगत दस्तावेजों का गहन परीक्षण और विश्लेषण करने के पश्चात ही आरोपों की पुष्टि करनी चाहिए थी।

10. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पुनर्विलोकन समिति ने वस्तुतः अपीलकर्ता को उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से लगभग दोषमुक्त कर दिया था, केवल इतना संकेत देते हुए कि “कर्तव्यपालन में कमी के कुछ संकेत परिलक्षित होते हैं।” ऐसी स्थिति में, विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्देशानुसार राज्य सरकार को दण्ड के संबंध में नया आदेश पारित करना था। किन्तु पुनर्विलोकन समिति की प्रतिवेदन पर पूर्णतः मौन रहते हुए राज्य सरकार ने रिट न्यायालय के आदेश को चुनौती देने का निर्णय लिया और वर्ष 2011 में उच्च न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष पत्र पेटेंट अपील दायर की।

11. वर्तमान अपीलकर्ता ने उक्त पत्र पेटेंट अपील की ग्राह्यता पर यह आपत्ति उठाई कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन राज्य सरकार ने पुनर्विलोकन समिति का गठन करके तथा उससे पुनर्विलोकन कार्य करवाकर कर लिया था। उसके पश्चात

राज्य सरकार के लिए उस आदेश को चुनौती देना और अपील दायर करना खुला नहीं था।

12. तथापि, खंडपीठ ने उक्त आपत्ति में कोई सार नहीं पाया। इसके बाद विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश का गुण-दोष के आधार पर परीक्षण किया गया। रिट अपील न्यायालय की राय में, चूँकि अपीलकर्ता ने दिनांक 28 अक्टूबर, 1993 तथा 17 जनवरी, 1994 की अपनी टिप्पणियाँ लिखने के तथ्य से इनकार नहीं किया था, और ये टिप्पणियाँ आरोपपत्र के साथ उसे उपलब्ध करा दी गई थीं, तथा उसने यह भी नहीं नकारा था कि उसे कॉस्मो ट्रांसपोर्ट की अनियमितताओं की जानकारी थी, इसलिए उसके विरुद्ध आरोप सिद्ध हो गए थे। खंडपीठ के अनुसार, अपीलकर्ता ने केवल अपने वरिष्ठ अधिकारियों पर उत्तरदायित्व डालने का प्रयास किया और सी.सी.ए. नियमावली के नियम 17 तथा भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2) के अंतर्गत अपने अधिकारों का आग्रह किया। खंडपीठ ने यह भी माना कि यद्यपि नियम 17 में प्रमुख दण्ड आरोपित करने के लिए विभागीय जाँच की विस्तृत प्रक्रिया निर्धारित है, फिर भी इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रत्येक मामले में आरोपों को साक्षियों का परीक्षण करके ही सिद्ध किया जाए। वर्तमान मामले में आरोपों को केवल दस्तावेजी साक्ष्यों के आधार पर सिद्ध करने का प्रयास किया गया था और आरोप के समर्थन में किसी साक्षी का परीक्षण करना या न करना राज्य सरकार के विवेकाधिकार के अंतर्गत था। जहाँ तक अपीलकर्ता द्वारा माँगे गए दस्तावेजों की आपूर्ति न किए जाने का प्रश्न है, विवादित निर्णय में कहा गया कि वे दस्तावेज न तो प्रभावी प्रतिरक्षा के लिए आवश्यक थे और न ही यह प्रदर्शित किया गया कि ऐसे दस्तावेज वास्तव में अस्तित्व में थे। इस संबंध में उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की :—

"हमारी राय में, जब अभियुक्त कर्मचारी ने दिनांक 29 अक्टूबर, 1993 तथा 17 जनवरी, 1994 की टिप्पणियाँ लिखे जाने के तथ्य से इनकार नहीं किया, तथा उसने मेसर्स कॉस्मो ट्रांसपोर्ट के कृत्यों की जानकारी होने से भी इनकार नहीं किया, तब इसके अतिरिक्त

कुछ और सिद्ध किया जाना आवश्यक नहीं था। सद्भावना का अभाव तथा कर्तव्य के प्रति समर्पण का अभाव ऐसे विषय हैं जिन्हें दस्तावेजी अथवा मौखिक साक्ष्य से प्रत्यक्ष रूप से सिद्ध अथवा असिद्ध नहीं किया जा सकता। ये ऐसे विषय हैं जिनका अनुमान कर्मचारी के आचरण से लगाया जाता है। समानता के सिद्धांत के आधार पर दी गई चुनौती ग्राह्य नहीं है। अनुशासनात्मक कार्यवाहियों में समानता का सिद्धांत लागू नहीं होता। यह पर्याप्त है कि कर्मचारी के विरुद्ध लगाए गए आरोप सिद्ध हो जाएँ। इसके अतिरिक्त, यद्यपि इस संबंध में प्रतिशपथपत्र में उत्तर नहीं दिया गया है, तथापि विद्वान अधिवक्ता श्री पी. के. वर्मा ने न्यायालय में यह प्रस्तुत किया कि घटना में संलिप्त अन्य अधिकारियों के विरुद्ध केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा अभियोजन चलाया गया था। केवल इस कर्मचारी के संबंध में विभागीय कार्यवाही की संस्तुति की गई थी।"

13. दोनों पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ताओं को सुनने के पश्चात् हमारा मत है कि उच्च न्यायालय का विवादित निर्णय विधि की दृष्टि से टिकाऊ नहीं है। इसे निरस्त किया जाना आवश्यक है और यह अपील स्वीकार किए जाने योग्य है। प्रथम दृष्टया, उच्च न्यायालय द्वारा पत्र पेटेंट अपील की ग्राह्यता के संबंध में अपीलकर्ता की आपत्ति को अस्वीकार करना त्रुटिपूर्ण था। जैसा कि ऊपर विस्तार से उल्लेख किया गया है, रिट न्यायालय ने विभागीय जाँच की प्रक्रिया में गंभीर त्रुटियाँ पाई थीं, क्योंकि न तो कोई दस्तावेज उपलब्ध कराया गया था, न ही किसी साक्षी का परीक्षण किया गया था, बल्कि इसके विपरीत अपीलकर्ता पर अपनी निर्दोषता सिद्ध करने का भार डाल दिया गया था। तथापि, विद्वान एकल न्यायाधीश ने नए सिरे से जाँच कराने का निर्देश नहीं दिया, बल्कि यह मत व्यक्त किया कि यह ऐसा मामला नहीं था जिसमें अपीलकर्ता पर सेवा से बर्खास्तगी का दण्ड लगाया जाना चाहिए था, क्योंकि यह दण्ड आरोपों की प्रकृति की तुलना में असंगत एवं असमानुपातिक था। परिणामस्वरूप, सी.सी.ए. नियमावली के नियम 24(2) के प्रावधान को ध्यान में रखते हुए, दण्ड के प्रश्न पर नए सिरे से आदेश पारित करने के लिए प्रकरण वापस

भेज दिया गया। यह भी निर्देशित किया गया कि दण्डादेश पारित करते समय इस तथ्य पर विचार किया जाए कि यह पहला अवसर था जब अपीलकर्ता विभागीय कार्यवाही का सामना कर रही थी।

14. यदि राज्य सरकार रिट न्यायालय द्वारा अपनाई गई कार्यवाही अथवा उसके निर्देशों से संतुष्ट नहीं थी, तो उचित उपाय यह था कि वह उस आदेश के विरुद्ध अपील दायर करती। किन्तु उसने इसके विपरीत उस आदेश को लागू करने का निर्णय लिया और सी.सी.ए. नियमावली के नियम 24(2) के अनुसार पुनर्विलोकन समिति का गठन किया। तीन अत्यंत वरिष्ठ अधिकारियों से गठित इस पुनर्विलोकन समिति ने पूरे मामले का विस्तृत परीक्षण किया और अपीलकर्ता के पक्ष में अनेक महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ कीं। यह नियमावली के अंतर्गत उपलब्ध एक विभागीय उपचार था और समिति को संपूर्ण विभागीय जाँच कार्यवाही तथा जाँच पदाधिकारी द्वारा दर्ज निष्कर्षों के गुण-दोष की पूर्ण समीक्षा करने का अधिकार प्राप्त था। जैसा कि ऊपर उद्धृत किया जा चुका है, समिति की निष्कर्षात्मक टिप्पणियों से यह स्पष्ट है कि अधिकतम यही कहा जा सकता था कि **"कर्तव्यपालन में कमी के संकेत"** दिखाई देते हैं और किसी भी स्थिति में **"कर्तव्य के प्रति समर्पण का अभाव"** अथवा **"कार्य के प्रति निष्ठाहीनता"** पूर्ण रूप से सिद्ध नहीं मानी जा सकती। नियम 24 के अधीन यह अधिकार प्राप्त होने के कारण पुनर्विलोकन समिति की ऐसी प्रतिवेदन, जिसमें अपीलकर्ता के विरुद्ध कोई गंभीर आरोप सिद्ध नहीं पाया गया था, राज्य सरकार द्वारा गंभीरतापूर्वक विचारणीय थी। राज्य सरकार का दायित्व था कि वह यह निर्धारित करे कि पूर्व में दी गई सेवा से बर्खास्तगी के स्थान पर अपीलकर्ता पर कौन-सा उपयुक्त दण्ड लगाया जाना चाहिए। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि पुनर्विलोकन समिति की प्रतिवेदन सरकार को स्वीकार्य नहीं थी। फलस्वरूप उसने अपना रुख पूर्णतः बदल लिया और पलटी मारते हुए विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश को चुनौती देने का निर्णय कर लिया।

हमारे विचार में, उस समय तक ऐसा करना अत्यधिक विलंबित था, क्योंकि राज्य सरकार न केवल उक्त निर्णय को स्वीकार कर चुकी थी, बल्कि उसके निर्देशों का पालन करते हुए पुनर्विलोकन समिति का गठन भी कर चुकी थी तथा समिति को अपना कार्य पूर्ण करने की अनुमति भी दे चुकी थी। हमारा मत है कि इन परिस्थितियों में राज्य सरकार द्वारा दायर पत्र पेटेंट अपील पर विचार ही नहीं किया जाना चाहिए था। अपीलकर्ता की इस आपत्ति को खंडपीठ ने समुचित रूप से नहीं समझा और केवल यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि— **"यदि राज्य सरकार ने न्यायालय के निर्देश से पृथक रूप से पुनर्विलोकन समिति गठित की हो और ऐसी समिति ने अपनी प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दी हो, तो इससे राज्य सरकार का अपील दायर करने का अधिकार समाप्त नहीं हो जाता।"** इस दृष्टिकोण में यह महत्वपूर्ण तथ्य अनदेखा कर दिया गया कि राज्य सरकार ने आदेश के अनुपालन की प्रक्रिया आरंभ करके वस्तुतः विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश को स्वीकार कर लिया था। और भी महत्वपूर्ण यह है कि उच्च न्यायालय ने पुनर्विलोकन समिति की प्रतिवेदन पर कोई ध्यान नहीं दिया, जबकि उस प्रतिवेदन ने अपीलकर्ता को लगभग सभी गंभीर आरोपों से मुक्त कर दिया था और केवल एक हल्की प्रतिकूल टिप्पणी की थी। यद्यपि वर्तमान मामले के तथ्यों के आधार पर हमारे द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत के समर्थन में किसी अतिरिक्त प्राधिकार की आवश्यकता नहीं है, तथापि हमारे दृष्टिकोण को इस न्यायालय के निर्णय **भारत संघ एवं अन्य बनाम बढ़ई कामगार संघ एवं अन्य, (2006) 12 उच्चतम न्यायालय वाद 435** से भी कुछ समर्थन प्राप्त होता है।

15. खंडपीठ के निर्णय के गुण-दोष पर आते हुए, हमारे समक्ष इस बात पर विस्तृत बहस हुई कि आवश्यक दस्तावेज उपलब्ध न कराए जाने के संबंध में खंडपीठ द्वारा की गई टिप्पणियाँ विधिसम्मत थीं अथवा नहीं, तथा क्या दस्तावेजों की अनुपलब्धता से अपीलकर्ता के पक्ष को कोई वास्तविक क्षति पहुँची थी। अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सिन्हा ने **उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम वी. सरोज कुमार सिन्हा, (2010)**

2 **उच्चतम न्यायालय वाद** *772* के निर्णय का उल्लेख किया, जिसका निर्णय हममें से एक (न्यायमूर्ति एस.एस. निज्जर) द्वारा लिखा गया था। उस मामले में आवश्यक दस्तावेज उपलब्ध न कराए जाने के कारण विभागीय जाँच को निरस्त कर दिया गया था। न्यायालय ने यह कहा था कि जब किसी सरकारी सेवक के विरुद्ध विभागीय जाँच की जाती है, तब उसे एक सामान्य औपचारिक कार्यवाही नहीं माना जा सकता और जाँच के दौरान प्रक्रिया संबंधी निष्पक्षता का पालन किया जाना अनिवार्य है। दूसरी ओर, उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह तर्क दिया कि दस्तावेजों की अनुपलब्धता से अपीलकर्ता को कोई क्षति नहीं पहुँची तथा खंडपीठ इस निष्कर्ष पर पहुँचने में सही थी कि अपीलकर्ता द्वारा स्वयं की गई टिप्पणियों के आधार पर उसके विरुद्ध आरोप सिद्ध हो जाते हैं। यद्यपि हम प्रारम्भिक रूप से यह टिप्पणी कर सकते हैं कि दस्तावेजों की आपूर्ति अपीलकर्ता के लिए इस दृष्टि से आवश्यक हो सकती थी कि वह यह स्पष्ट कर सके कि उसने विवादित टिप्पणियाँ किन परिस्थितियों में लिखी थीं तथा उनका औचित्य क्या था, तथापि इस तर्क पर और अधिक विचार करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि यही परीक्षण पुनर्विलोकन समिति स्वयं कर चुकी है। यदि हम यह मान भी लें कि दिनांक 28 अक्टूबर, 1993 तथा 17 जनवरी, 1994 को अपीलकर्ता द्वारा की गई टिप्पणियों में किसी प्रकार की कर्तव्यहीनता या लापरवाही का तत्व था, तब भी अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि आरोप की प्रकृति क्या थी तथा वह किस सीमा तक सिद्ध हुआ। इस संबंध में पुनर्विलोकन समिति की प्रतिवेदन में स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज हैं और उन निष्कर्षों की उपेक्षा करना अथवा उन्हें गौण मान लेना उच्च न्यायालय के लिए उचित नहीं था।

16. इस अवसर पर हम सी.सी.ए. नियमावली में निहित विभागीय अपील तथा पुनर्विलोकन की शक्तियों से संबंधित प्रावधानों का उल्लेख करना उचित समझते हैं। जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है, इस संदर्भ में नियम 24 विशेष रूप से प्रासंगिक है। नियम 23 तथा नियम 24 इस प्रकार हैं :—

नियम 23 – वे आदेश जिनके विरुद्ध अपील की जा सकती है

कोई भी सरकारी सेवक निलंबन आदेश अथवा दण्डादेश के विरुद्ध अपील प्रस्तुत कर सकता है।

नियम 24 – अपीलीय प्राधिकारी

(1) कोई सरकारी सेवक, जिसमें वह व्यक्ति भी सम्मिलित है जो अब सरकारी सेवा में नहीं है, नियम 23 में निर्दिष्ट आदेशों के विरुद्ध सरकार द्वारा सामान्य अथवा विशेष आदेश से निर्दिष्ट प्राधिकारी के समक्ष अपील कर सकता है। यदि ऐसा कोई प्राधिकारी निर्दिष्ट न हो, तो —

(i) जहाँ ऐसा सरकारी सेवक वर्तमान में अथवा पूर्व में—

- सिविल सेवा, समूह 'ए' या समूह 'बी' का सदस्य रहा हो, अथवा
- समूह 'ए' या समूह 'बी' के सिविल पद का धारक रहा हो,

तब अपील—

(क) नियुक्तिकर्ता प्राधिकारी के समक्ष की जाएगी, यदि विवादित आदेश उसके अधीनस्थ किसी प्राधिकारी द्वारा पारित किया गया हो; अथवा

(ख) राज्य सरकार के समक्ष की जाएगी, यदि वह आदेश किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा पारित किया गया हो।

(ii) जहाँ ऐसा सरकारी सेवक वर्तमान में अथवा पूर्व में समूह 'सी' अथवा समूह 'डी' की सिविल सेवा का सदस्य रहा हो, वहाँ अपील उस प्राधिकारी के समक्ष की जाएगी जिसके अधीन विवादित आदेश पारित करने वाला प्राधिकारी प्रत्यक्ष रूप से अधीनस्थ हो।

(2) राज्य सरकार द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध कोई अपील नहीं होगी; तथापि, स्मारपत्र के

रूप में पुनर्विलोकन याचिका प्रस्तुत की जा सकेगी।

(3) यदि वह व्यक्ति जिसने विवादित आदेश पारित किया था, बाद में अपनी नियुक्ति अथवा अन्य किसी कारण से उसी आदेश के संबंध में अपीलीय प्राधिकारी बन जाता है, तो उस आदेश के विरुद्ध अपील उस प्राधिकारी के समक्ष की जाएगी जिसके प्रति वह व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से अधीनस्थ है, अथवा ऐसे अन्य प्राधिकारी के समक्ष जिसे इस उद्देश्य के लिए सरकार द्वारा विशेष रूप से अधिकृत किया गया हो।

17. नियम 23 के अंतर्गत किसी सरकारी सेवक को दण्डादेश के विरुद्ध अपील करने का अधिकार प्रदान किया गया है। तथापि, जहाँ आदेश स्वयं सरकार द्वारा पारित किया गया हो, वहाँ यद्यपि अपील का प्रावधान नहीं है, फिर भी ऐसे अधिकारी को पुनर्विलोकन का उपचार उपलब्ध कराया गया है, जिसे वह स्मारपत्र के रूप में प्रस्तुत कर सकता है। इसी प्रावधान को ध्यान में रखते हुए विद्वान एकल न्यायाधीश ने प्रकरण को पुनः सरकार के पास भेजा था और उन निर्देशों के अनुपालन में अपीलकर्ता ने पुनर्विलोकन समिति के समक्ष अपना अभ्यावेदन/स्मारपत्र प्रस्तुत किया, जो विशेष रूप से इसी उद्देश्य के लिए गठित की गई थी। इस प्रकार पुनर्विलोकन समिति ने वैधानिक रूप से प्रदत्त अधिकारों का प्रयोग करते हुए अपना दायित्व निर्वहन किया। राज्य सरकार का यह अनिवार्य कर्तव्य था कि वह उक्त प्रतिवेदन पर विचार कर उसे उसके तार्किक निष्कर्ष तक पहुँचाती।

18. सी.सी.ए. नियमावली के नियम 24(2) के अंतर्गत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए उक्त समिति ने स्पष्ट रूप से कहा कि केवल "कर्तव्यपालन में कमी के संकेत परिलक्षित होते हैं" तथा जाँच पदाधिकारी ने जाँच के दौरान साक्ष्यगत दस्तावेजों का गहन परीक्षण एवं विश्लेषण नहीं किया था। जब स्वयं विभागीय प्राधिकारियों के अनुसार केवल इसी सीमा तक आरोप सिद्ध हुआ था, तब सेवा से बर्खास्तगी का दण्ड पूर्णतः अनुचित और असंगत था। यह ऐसा मामला नहीं था जिसमें अपीलकर्ता के विरुद्ध कर्तव्य के प्रति समर्पण के अभाव अथवा

किसी वित्तीय अनियमितता का आरोप सिद्ध हुआ हो। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि पुनर्विलोकन समिति ने स्पष्ट शब्दों में अपीलकर्ता की इस दलील को स्वीकार किया कि उसने प्रस्ताव सामान्य कार्यालयीय प्रक्रिया के अंतर्गत प्रस्तुत किया था तथा मुख्य उत्तरदायित्व कार्यपालक अभियंता, किशनगंज का था।

19. उपर्युक्त परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए हमारा मत है कि पुनर्विलोकन समिति की प्रतिवेदन प्राप्त होने के पश्चात राज्य सरकार को उसके आधार पर उपयुक्त दण्डादेश पारित करना चाहिए था, जो उसने नहीं किया। उत्तरदाताओं ने यह स्पष्ट करने के लिए कोई संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं दिया कि उक्त प्रतिवेदन पर विचार क्यों नहीं किया गया अथवा उसे उपेक्षित करने के लिए कोई वैध अथवा ठोस कारण क्या था। ऐसी स्थिति में हमारा मत है कि सरकार को उक्त प्रतिवेदन के आधार पर आगे की कार्यवाही करनी चाहिए और उसी के अनुरूप निर्णय लेना चाहिए।

20. अतः हम इस अपील को स्वीकार करते हैं और खंडपीठ द्वारा पारित आदेश को निरस्त करते हैं। उत्तरदाता-राज्य सरकार को निर्देश दिया जाता है कि वह पुनर्विलोकन समिति की प्रतिवेदन तथा विद्वान एकल न्यायाधीश की उस टिप्पणी को ध्यान में रखते हुए, जिसमें कहा गया था कि यह अपीलकर्ता के संपूर्ण सेवाकाल में विभागीय कार्यवाही का पहला अवसर था, उपयुक्त दण्डादेश पारित करे।

21. सुनवाई के दौरान हमें यह भी अवगत कराया गया कि अपीलकर्ता इस माह के अंत तक अधिवार्षिकी आयु प्राप्त करने वाली है। चूँकि जो दण्ड दिया जाना है वह सेवा से बर्खास्तगी, सेवा से पदच्युति अथवा अनिवार्य सेवानिवृत्ति नहीं होगा, बल्कि उससे कम कठोर दण्ड होगा, इसलिए अपीलकर्ता को तत्काल प्रभाव से सेवा में पुनर्स्थापित किया जाए। राज्य सरकार इस संबंध में आदेश **दो सप्ताह** के भीतर पारित करेगी।

22. उपर्युक्त शर्तों के साथ अपील स्वीकार की जाती है। व्यय के संबंध में कोई आदेश

नहीं।

बी.बी.बी. अपील स्वीकार की गई।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता । समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।